



# कभी-कभार

अशोक वाजपेयी

## कला के बारे में कवि

**फ्रांस** में आधुनिक कला-आलोचना की शुरुआत फ्रेंच कवि चार्ल्स बोदेलेयर से हुई: यह परंपरा एक शताब्दी से अधिक लंबी है और अब तक प्राणवान है। ईव बोनफुआ इस समय फ्रेंच भाषा के जीवंत कवियों में सबसे बुजुर्ग और बड़े कवि माने जाते हैं और उन्हें नोबेल न मिलना नोबेल पर टिप्पणी है, उनकी महान उपलब्धि पर नहीं। वे लगभग सतर वर्षों से कविता और साहित्यिक आलोचना के अलावा कला-आलोचना लिखते रहे हैं और अतियथार्थवादी आंदोलन से उनका घनिष्ठ संबंध भी रहा है। अंगरेजी अनुवाद में लगभग बीस वर्ष पहले शिकागो यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित उनके कला-निबंधों का एक संचयन 'दि ल्योर एंड दि टूथ ऑफ़ पेंटिंग' अब मेरे हाथ लगा। बोनफुआ ने इस संस्करण के लिए एक विशेष भूमिका में स्पष्ट किया है कि वे न तो कला के इतिहासकार या आलोचक हैं। उनका मत है कि कोई कलाकृति तभी जीवंत होती है, जब वह भाषा के तर्क और आधिकारिकता से अपने को पूरी तरह से मुक्त कर लेती है। महान कृतियों की अनिवार्य विशेषता यह होती है कि वे भाषा की अवज्ञा करती हैं और यह हमें तब तक नहीं समझ सकते, जब तक कि अपने अवधारणात्मक विमर्श पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाते।

हर भाषिक संकेत में अर्थ होता है और ध्वनि भी। अक्सर हम अर्थ में इतना उलझ जाते हैं कि ध्वनि को दुर्लक्ष्य करते हैं। अर्थ से आक्रांत होने की वजह से हम विचार-विमर्श में फंसे हैं और किसी काल और देश-विशेष में किसी व्यक्ति का अपने से जो आत्मीय संबंध होता है उसकी अनदेखी-अनसूनी करते हैं। शब्दों के अंतःसंगीत का प्रवाह और प्रहार अवधारणाओं से बने-गढ़े अर्थसंसार को ध्वस्त करता है और ब्रह्मांड से तादात्म्य का जो क्षण उपस्थित करता है वह कृति को अनूठी आभा देता है। यहां आत्म या अहं विस्थापित होता है। बचती उपस्थिति है: यह उपस्थिति ही कला का आकर्षण और सच होती है।

बोनफुआ को लगता है कि कविता और कला दोनों ही आत्म के अतिक्रमण की चेष्टा करती हैं, भाषा की संरचना में दार डाल कर। अगर ऐसा अतिक्रमण नहीं होता तो कृति निरा आत्मदर्पण बन कर रह जाएगी। कविता का विशेष लक्ष्य संसार को और मनुष्यों को उपस्थिति और इसलिए गरिमा प्रदान करना है। आलोचना का काम इस उपस्थिति को उजागर कर तत्काल बनाना है। यह रसिक-संवेदना के पुनराविष्कार की मांग करता है: संवेदनशील ध्यान और सतर्कता की, सावधानी की। यह ऐसे पुनर्जागरण का भी आव्हान है, जिसमें बहुत असमान कृतियां जैसे रोमन स्थापत्य, देलाक्रोए की कृतियां, होरयूजी के बोधिसत्व और मोत्जार्ट में संसार और अपने सामने वही राह दिखाई देगी, जो उपस्थिति की तरफ ले जाती है और मानवता को वे तर्क सुलभ कराती हैं, जिनसे उसकी अपने में आस्था बनी रह सकती है।

## कला-प्रबंध

**क**लाओं के संदर्भ में प्रबंध का नाम लेते ही कुछ असमंजस पैदा होता है: बाजार, संस्थाओं, व्यवसायों, वस्तुओं के उत्पादन और बिक्री आदि का प्रबंध हो सकता है। पर कलाओं का प्रबंध संभव नहीं, खतरनाक हो सकता है, ऐसे भाव उभरते हैं। सच्चाई यह है कि कलाओं को भी प्रबंध की दरकार होती है: प्रकाशक, कलावीथिकाएं, संग्रहालय, सभागार, रंगमंच आदि भौतिक साधन कलाओं को आवश्यक लगते हैं। ये सभी प्रबंध के क्षेत्र में आते हैं। हमारी एक बड़ी सांस्कृतिक समस्या यह है कि कलाओं की प्रस्तुति, विस्तार और साधन के लिए जो भौतिक संसाधन जरूरी हैं उनमें से अधिकांश कुप्रबंध की चपेट में हैं। उन्हें सुधरता और समझ से बनाने-चलाने वाले लोग कम हैं। यहां निरा सद्भाव काम नहीं करता: प्रबंध के लिए कौशल, विशेषज्ञता और प्रशिक्षण चाहिए। इस पर केंद्र सरकार का ध्यान रहा है, पर उस मामले में कुछ करने की प्रक्रिया धीमी ही रही है।

इस संदर्भ में 'आर्टिथक साउथ एशिया' एक ठोस और प्रभावशाली पहल है, जिसके अंतर्गत युवा कला-प्रबंधकों के प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम 'खोज' संस्था ब्रिटिश कौंसिल और मैक्स म्यूलर भवन के साथ

मिल कर चला रही है। इस कार्यक्रम में दक्षिण एशिया के भारत समेत कई देशों के एक सौ बीस युवा कलाप्रबंध के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं और अब अनेक स्थानों और संस्थाओं में कार्यरत हैं। इनमें से अनेक को यूरोप के कई संस्थानों में कुछ समय के लिए जाकर सीखने का अवसर भी मिला है। ब्रिटिश कौंसिल में एक संयुक्त आयोजन में उनमें से कइयों से मिलने और कुछ काम देखने का अवसर मिला।

इधर जो सरकारी पहल हुई है उसके कई पक्ष सामने आए। कलाप्रबंध के विशेष पाठ्यक्रम जल्दी ही अमदाबाद और आंबेडकर विश्वविद्यालय में शुरू होने जा रहे हैं। यह स्पष्ट हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं के अलावा निजी क्षेत्र की अनेक संस्थाओं में भी ऐसे प्रबंधकों की जरूरत है। इस पर कुछ बहस हुई कि ऐसे पाठ्यक्रम निरंतर प्रबंध-पाठ्यक्रमों का हिस्सा न बनाए जाकर अधिक अंतरानुशासनी व्यवस्था का अंग बनें। जाहिर है कि स्वयं कलाओं का क्षेत्र जटिल और विविध दोनों ही है। इसलिए वहां एक तरह का या एकरूप प्रबंध का मॉडल लागू न तो हो सकता है और न ही कारगर होगा। उसमें प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए, जो एकरूपता के बजाय विविधरूपता को संबोधित करे। रख-रखाव, सुनियोजित प्रक्षेपण, दर्शकों-श्रोताओं-रसिकों की अपेक्षाओं का खयाल, वित्तीय साधन जुटा सकने का हुनर आदि अनेक पहलुओं को ध्यान में रखना होगा। कलाओं में सब कुछ स्वतःस्फूर्त नहीं होता: बहुत-सा ऐसा भी रचा-गढ़ा जाता है, जो किसी समय या स्थान-विशेष की आवश्यकता से उपजता है। हमारे देश में सांस्कृतिक संस्थाओं की जो पारंपरिक पद्धतियां और प्रथाएं थीं उनका पुनराविष्कार भी किया जाना चाहिए। नए समय के परिवर्तनों के अनुरूप हमें नई संस्थाएं स्थापित करने का भी सोचना चाहिए। यह सब सुशिक्षित युवा कर सकते हैं, अगर वे परंपरा और आधुनिकता दोनों में साक्षर हों और जिन्हें प्रबंध करने का हुनर, नई कल्पना करने का जोखिम उठाना आता हो।

## लिखना होगा अंत तक

**क**ई बार लगता है कि अब लिखने का समय नहीं रहा: समय लिखने के पार चला गया है, बदल रहा है और आपके पास शब्द नहीं हैं कि अब समय और उसके तेज बदलाव को पकड़-समझ सकें। 'तनाव' पत्रिका की संख्या 128 में फिनिश कवि पावो हाविको की कुछ कविताओं के सईद शेख द्वारा मूल भाषा से हिंदी में किए गए अनुवाद संकलित किए गए हैं। उसमें पहली ही कविता है:

पुल

पुल जीते जाते हैं उनके ऊपर से गुजर कर।

हर वापसी होती है हार

हर रवानगी है जीत वापसी से।

कवि,

कागजों को लिखना होता है अंत तक।

पढ़ कर महसूस हुआ कि जो काम आपके शब्द नहीं कर सकते, सौभाग्य से, दूसरों के कर पाते हैं और आपको यह भरोसा और सबक देते हैं कि 'लिखना होता है अंत तक'। हाविको की एक और कविता है:

गाली देते हुए शुरू करता हूं कविता

गाली देते हुए शुरू करता हूं कविता,

ऐसा किया जाता रहा है

युग-युगांतर,

इस्तेमाल की गई है एक ही पतली

कई बार।

फेंक दी गई अस्थियां, आग में।

ईसान मूल रूप से रचा गया है

एक ही बार उपयोग के लिए।

उसे मुश्किल है समझ पाना यह,

उसने नहीं रचा है स्वयं को।

लिखने का एक अनिवार्य फल यह है कि आपको लगता है कि ऊपर से पूरा होने के बावजूद वह अधूरा है: हम पूरा कभी लिख नहीं पाते। जो लिखते हैं वह अधूरा रहता है, भले औरों को वह पूरा लगता है। अगर कविता संसार के नाम एक असमाप्य प्रेमपत्र है तो कविताएं आधी-अधूरी चिट्ठियां भर हैं। फिर हाविको कहते हैं, बात हमारी है, शब्द उनके हैं:

उठा एक कदम अपने से दूर, उठा पहला कदम

और चल पड़ सफर पर..

ashok\_vajpeyi@yahoo.com